अङ्कः – १४

ISSN : 2248-9495

जयन्ती

चतुर्दशं पुष्पम्

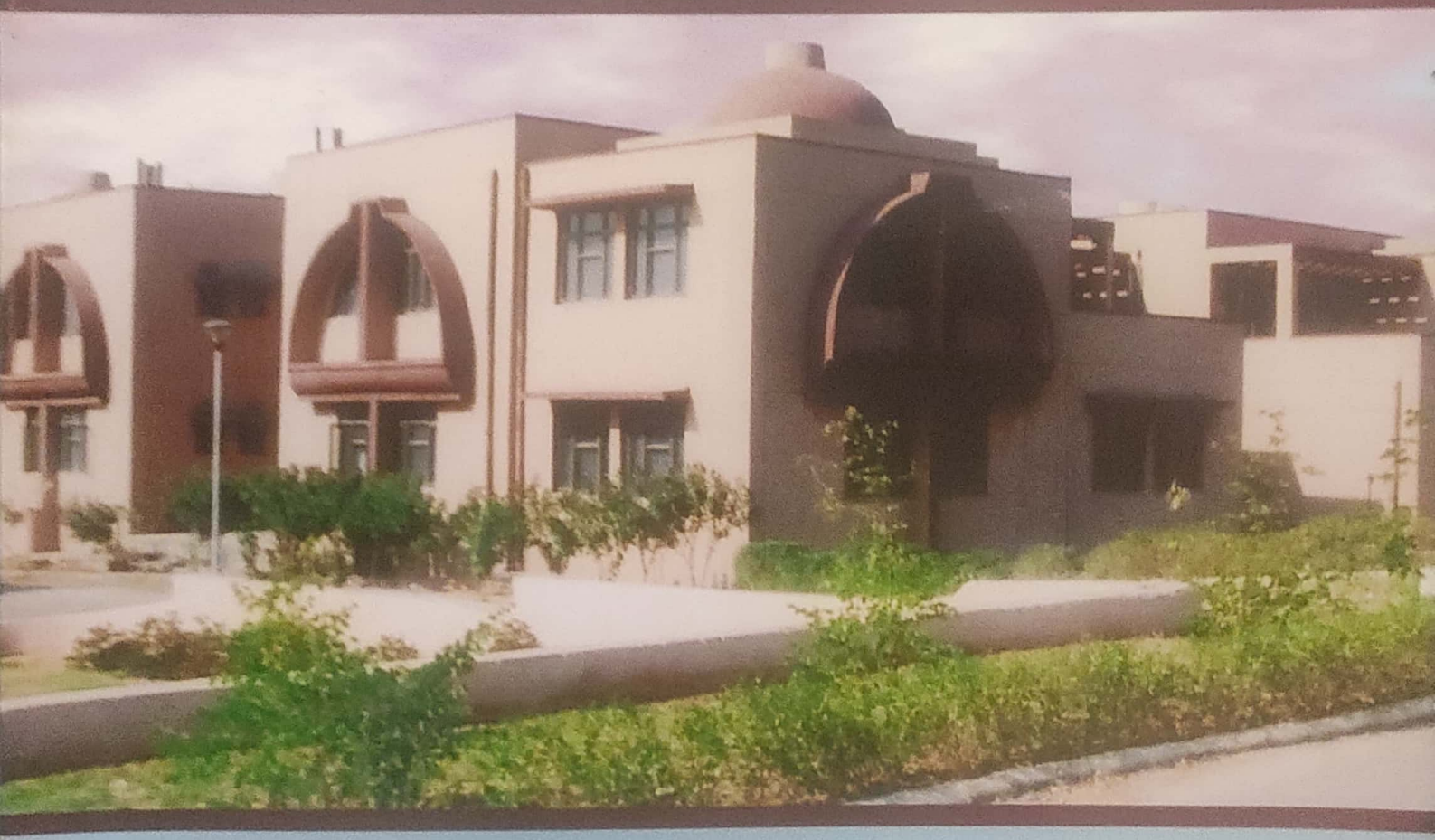

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

राष्ट्रियमूल्याङ्कनप्रत्यायनपरिषदा 'ए' श्रेण्या प्रमाणितम्

(मानितविश्वविद्यालयः), जयपुरपरिसरः, जयपुरम्

Scanned with OKEN Scanner

अङ्कः – XIV

ISSN: 2248-9495

जयन्ती

चतुर्दशं पुष्पम्

संरक्षकः मार्गदर्शकश्च

डॉ. प्रकाशपाण्डेयः (प्राचार्यः)

प्रधानसम्पादकः

प्रो. वासुदेवशर्मा

सम्पादकाः

प्रो. कमलेशकुमारजैनः • डॉ. विष्णुकान्तपाण्डेयः

• डॉ. हरीशचन्द्रतिवाडी • डॉ. कुलदीपशर्मा

सहसम्पादकौ

• डॉ. रामेश्वरदयालशर्मा • डॉ. दिनेशयादवः

२०१७ वर्षम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

जयपुरपरिसरः

त्रिवेणीनगरम्, गोपालपुरा-बाईपास, जयपुरम्-302018

दूरभाषाङ्कः 0141-2761115 (का.) • फैक्स : 0141-2760686

ई-मेल : principaljp.in@gmail.com

वेबसाइट : www.rsksjaipur.ac.in

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रमणिका

1.	दूरस्थमाध्यमेन बृहत्पाराशरहोराशास्त्रस्य अध्ययने समस्याः सम्भावनाश्च	प्रो. वासुदेवशर्मा	5
2.	राजस्थानराज्ये दिव्याङ्गजनेभ्यः संवैधानिकप्रावधानानि	प्रो. सन्तोषमित्तलः	11
3.	संस्कृतवाङ्मयस्याभिवृद्धौ शतकानुगं जैनसाहित्यम्	प्रो. श्रीयांशकुमारसिंघईः	14
4.	पुराणेषु शक्तितत्त्वम्	प्रो. सत्यमकुमारी	21
5.	Cross-Cultural Communication as Translated Poetry	Prof. K.C. Yogi	26
6.	ज्योतिःशास्त्रदृशा विद्याबाधाकर्तृकदोषाणां चिन्तनप्रकारः	प्रो. ईश्वरभट्टः	34
7.	षट्खण्डागमसूत्रगतसत्प्ररूपणा का दार्शनिक अनुशीलन	प्रो. कमलेश कुमार जैन	42
8.	लक्षणावृत्तेरन्यथासिद्धिः	डॉ. विष्णुकान्तपाण्डेयः	47
9.	शिक्षाशास्त्रस्य संस्कृतभाषायां महत्त्वम्	डॉ. बत्तीलालमीना	52
10.	संस्कृतवाङ्मये जलतत्त्वविमर्शः	डॉ. शुभस्मितामिश्रः	54
11.	द्वादश ध्वनिविरोधिनां मतम्	डॉ. किशोरकुमारदलाईः	63
12.	शैक्षिक प्रबन्धक का शिक्षा प्रक्रिया में योगदान	डॉ. दरियाव सिंह	68
13.	वेदान्तदर्शने शिक्षाविमर्शः	डॉ. कुलदीपशर्मा	71
14.	छायावादी और प्रगतिवादी काव्य में विधागत प्रयोग	डॉ. रेखा पाण्डेय	76
15.	The Concept and the Significance of Ardhnarishwar in Modern Era	Dr. Leena Tiwari	82
16.	राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थान, मानित विश्वविद्यालय जयपुर परिसर	डॉ. श्याम सुन्दर पाण्डेय	88
	स्थित ग्रन्थालयीय सन्दर्भ स्रोतों का वाङ्मयात्मक परिचयः	डॉ. जगदीश कुमार मिश्र	88
17.	भारतीय परम्परा में योग	रामजीलाल मीना	99
18.	भारतीयजीवनमूल्यज्ञानाय प्रचाराय च संस्कृतस्य साम्प्रतिकी आवश्यकता	डॉ. धर्मेन्द्रजैनः	101
19.	जैन शिक्षा पद्धति और विश्व शान्ति	डॉ. सुदर्शन मिश्र	106
20.	वेदों में वैश्विक पर्यावरण का शैक्षिकचिन्तन	डॉ. हरिओम शर्मा	116
21.	कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का स्वरूप	डॉ. विनी शर्मा	119
22.	सर्वतन्त्रः स्वतन्त्रः महाकविमाघः	डॉ. राकेशकुमारजैनः	126
23.	भाषाधिगमस्य सिद्धान्ताः	डॉ. रेखा शर्मा	131
24.	धर्मशास्त्रे निहिताः सामाजिकपरम्पराः	डॉ. सिद्धार्थशंकरदाशः	136
25.	संहिताशास्त्रे जलविज्ञानम्	डॉ. सुभाषचन्द्रमिश्रः	144
26.	कबीर की कविता की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. सुभाष चन्द्र	155
27.	योगीराज शिव	डॉ. दिनेश कुमार यादव	159
28.	भारतीय गणित एवं गणितज्ञ	डॉ. रामेश्वर दयाल शर्मा	162
29.	नैयायिकमतखण्डनपुरस्सरं वैयाकरणानां नये शक्तेः स्वरूपम्	डॉ. पंकजपुरोहितः	167
30.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में गृहस्थाचार का वैशिष्ट्य	डॉ. सुमत जैन	171
31.	भारतीय संविधान के दार्शनिक आधार	डॉ. सीमा अग्रवाल	176

Scanned with OKEN Scanner

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में गृहस्थाचार का वैशिष्ट्य

डॉ. सुमत जैन

सामान्यतः हम देखते हैं कि संसार में जितने भी धर्म या धर्मशास्त्र हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य को मानसिक संतुलन प्रदान करना है, दुविधा, द्वन्द्व, वेदना और शोक से मुक्त करना है, मनुष्य के भीतर एक ऐसी शान्ति को उत्पन्न करना है, जिसे सन्देह विचलित न कर सके, जिसे शंकाएँ हिला न सके। वस्तुतः धर्म वही है, जिससे सांसारिक अभ्युदय और आध्यात्मिक उन्नति दोनों ही प्राप्त होते हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय इस तथ्य को चरितार्थ करता है। आचार्य अमृतचन्द्र आध्यात्मिक विचारक हुए हैं, उन्होंने अनेकान्त को नमस्कार कर पुरुषार्थसिद्ध्युपाय का प्रतिपादन अध्यात्म और अहिंसा की भूमिका पर किया है अर्थात् आचार का विवेचन आध्यात्मिकता के साथ उपलब्ध होता है। रत्नत्रय मोक्षमार्ग का विवेचन करते हुए सम्यक्चारित्र के अन्तर्गत गृहस्थाचार को निरूपण किया है।

मानव जो क्रियाएँ करता है, मूलतः उसके स्वार्थ से प्रेरित होती हैं। क्रियाओं में कौन सी क्रिया अच्छी है और कौन सी बुरी, यह किसी मानदण्ड के निश्चित होने पर ही कहा जा सकता है। मानदण्ड के रूप में समाज का हित एवं शान्ति की रक्षा को रखा जा सकता है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह-ये सभी सामाजिक पाप हैं। व्यक्ति जितने अंश में इनका परित्याग करेगा, उतना ही वह सभ्य और समाज-हितैषी माना जायेगा तथा जितने व्यक्ति इन व्रतों का पालन करेंगे, उसी अनुपात में समाज शुद्ध, सुखी और प्रगतिशील हो सकेगा। अतएव इन व्रतों पर प्रस्तुत ग्रन्थ में बहुत जोर दिया गया है और इनका अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुविस्तृत विवेचन किया गया है।

जैनाचार्यों ने प्रथम तो यह अनुभव किया कि सबके लिए सब अवस्थाओं में इन व्रतों का एक साथ पूर्ण परिपालन सम्भव नहीं है। अतएव इन व्रतों के दो स्तर स्थापित किये गये- अणु और महत् अर्थात् एकदेश और सर्वदेश। पश्चात् काल में आवश्यक होने पर इनके अतिचार भी निर्धारित हुए, जिससे सच्चे अर्थ में इन व्रतों का पालन हो सके। इस प्रकार व्रतों के अणु और महत् - इन दो विभागों द्वारा जैन धर्म में गृहस्थ और मुनि-आचार के बीच समानता और भेद का प्रतिपादन किया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय से पूर्व रचित अनेक श्रावकाचार विषयक रचनाएँ हैं। जैन परम्परा में श्रावकों के आचार से सम्बन्धित परम्परा आचार्य कुन्दकुन्ददेव से प्राप्त होती है। प्रथम शताब्दी में ही आचार्य उमास्वामी ने भी तत्त्वार्थसूत्र की रचना की थी। यह संस्कृत की आद्यकृति मानी जाती है। इसमें श्रावकाचार के बीज प्राप्त होते हैं। श्वेताम्बर जैनागम अंग साहित्य के उवासगदशांग में दस कथानकों द्वारा गृहस्थों के व्रत सम्बन्धी नियम उपलब्ध होते हैं। इस आगम में श्रावक के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं इन सभी के अतिचारों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आचार्य समन्तभद्र ने जहाँ दर्शन सिद्धान्त आदि के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन किया, वहीं श्रावकों के आचार के लिए रत्नकरण्डकश्रावकाचार का सृजन भी किया है। इसी प्रकार आठवीं शताब्दी के आचार्य हरिभद्र ने सावयपण्णत्ति एवं सावयधम्मविहि-इन दोनों ग्रन्थों की रचना कर श्रावकाचार पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण श्रावकाचार ग्रन्थों की विद्यमानता के बावजूद आचार्य अमृतचन्द्रजी को श्रावकाचार की आवश्यकता अनुभूत हुई। पूर्व श्रावकाचारों की कमियों को दूर करने वाला पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पहला ऐसा श्रावकाचार ग्रन्थ है, जो उपलब्ध सभी श्रावकाचारों में निराला और अपने ढंग का अद्वितीय ग्रन्थ है[1]। इस ग्रन्थ में आचार की पुष्टि अध्यात्म के माध्यम से की गयी है। इसका एक अन्य वैशिष्ट्य यह भी है कि आचार्यश्री ने प्राचीन समय में रचित अनेक गाथाओं को संस्कृत में अनुवादित कर अपने ग्रन्थ में जोड़ दिया है। इन गाथाओं को संकलित करने का उद्देश्य यह हो सकता है कि लोग उन्हें विस्मृत न कर दें। प्रवचनसार में आगत निम्न गाथाओं की टीका नहीं की थी, क्योंकि वे इन्हें मूलग्रन्थ ही नहीं मानते थे, इन्हें संस्कृत में अनुवादित कर पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है[2]। यथा -

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मांसपेसीसु।
संततियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं।।
जो पक्कमपक्कं वा पेसी मंसस्स खादि फासदि वा।
सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं।।
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम्।।
आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितमेशीम्।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम्।।

-पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, पद्य संख्या ६७-६८

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की दूसरी विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ में गृहस्थों के पाँच अणुव्रत एवं रात्रिभोजन-त्याग के अन्तर्गत अहिंसा की मुख्यता से कथन किया गया है। इसमें अहिंसा का गहन,

गंभीर, सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन किया गया है। अहिंसा और हिंसा की परिभाषा में अन्तरंग पक्ष को लक्ष्य में रखते हुए कहा है कि आत्मा में मोहरागद्वेष की उत्पत्ति ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न न होना ही अहिंसा है –

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।४४।।

आचार्य अमृतचन्द्र ने हिंसा के भाव और द्रव्य के दो भेद किये हैं। इन दोनों के भी दो-दो भेद किये हैं – स्वभावहिंसा एवं परभावहिंसा तथा स्वद्रव्यहिंसा एवं परद्रव्यहिंसा। आत्मा में विकारी भाव रागद्वेषादि की उत्पत्ति स्वभावहिंसा है, क्योंकि इससे जीव के अपने शुद्धोपयोग भाव प्राणों का घात होता है एवं परभावहिंसा में दूसरे के प्राणों का घात होता है। जीव के अपने द्रव्य प्राणों का घात होता है अर्थात् प्रमाद के कारण अपने अंगों को कष्ट देना, आत्महत्या आदि करना स्वद्रव्यहिंसा है और दूसरे के द्रव्य प्राणों अर्थात् प्रमाद के कारण अन्य के प्राणों का घात करना, अंग पीड़ा आदि देना पर-द्रव्यहिंसा है। हिंसा-अहिंसा को आचार्य अमृतचन्द्र ने बहुत व्यापक रूप दिया है। उन्होंने झूठादि पापों को भी हिंसा का स्रोत बताते हुए उन्हें हिंसा में ही शामिल किया है, ऐसा कथन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है। क्योंकि इन सभी पापों से आत्मा के शुद्ध परिणामों का घात होता है[३]। रागभाव हिंसा है, अतः असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह भी रागादि रूप होने से हिंसा ही हैं।

विश्व की समस्त संस्कृतियों में अपने-अपने ढंग से अहिंसा को अभिव्यक्त किया है। इस्लाम संस्कृति ने अपने सहधर्मियों के साथ भ्रातृवत् व्यवहार करना, ईसाईयों में अहिंसा पर आधारित प्रेम व सहानुभूति पशु-पक्षी आदि प्राणधारियों की अपेक्षा केवल मानव तक सीमित होना, वेद-उपनिषदों में यज्ञ में होने वाली हिंसा तथा अन्यान्य भौतिक सुख हेतु की गई हिंसा का त्याज्य न होना आदि। किन्तु, श्रवण संस्कृति में उपलब्ध अहिंसा की चर्चा अन्यत्र अनुपलब्ध है। हिंसा-अहिंसा का सीधा सम्बन्ध आत्मपरिणामों से है। हास्य, रति, शोक, भय, जुगुप्सा आदि भावहिंसा के कारण नहीं, अपितु हिंसा के ही पर्याय हैं। हिंसा के फल में भावहिंसा और द्रव्यहिंसा में भावहिंसा की ही मुख्यता बताई है।

आचार्य अमृतचन्द्र गृहस्थ और मुनि के सम्बन्ध में कहते हैं कि रत्नत्रय के अनुगामी महामुनियों की प्रवृत्ति जगत् के लोगों से सर्वथा निराली होती है। गृहस्थों का आचरण पापक्रिया से युक्त होता है और ऐसे आचरणों से महामुनि सर्वथा दूर रहते हैं[४]। प्रायः इसी तरह की मिलती-जुलती व्यवस्था हम हिन्दु-धर्म में भी पाते हैं, जो मनुष्य जीवन में यथाक्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास धारण की चतुर्विध आश्रम-व्यवस्था से प्रमाणित होता है। वस्तुतः व्यक्ति ब्रह्मचर्य से जिस जीवन का प्रारम्भ करता है, उसकी परिसमाप्ति संन्यासाश्रम में ही जाकर होती है, जबकि साधक उस गृह तथा परिवार को भी, जो उसके बाल्य और युवा दोनों ही अवस्थाओं में आश्रय और आकर्षण के

Scanned with OKEN Scanner

स्थान रहे हैं, बन्धन का कारण समझता हुआ छोड़कर चल पड़ता है और पुनः उनकी ओर लौटकर देखता तक नहीं। यह मानव जीवन का कितना महान् परिवर्तन एवं कैसी कठोर साधना है?

प्रस्तुत ग्रन्थ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में श्रावक-जीवन के अंतिम लक्ष्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि हिंसाजनित पाप कर्मों से बचने के लिए दो स्थितियाँ हैं। एक स्थिति में महाव्रत धारणकर पूर्ण अहिंसक बना जा सकता है तथा दूसरी स्थिति में देशव्रत या दिग्व्रत अर्थात् मर्यादापूर्वक जीवन यापनकर यथाशक्ति अहिंसा-धर्म का पालन किया जा सकता है[4]। जो जीव बार-बार देखी हुई सकल पापरहित मुनिवृत्ति को कदाचित् ग्रहण न करे तो उसे एकदेश पापक्रिया रहित गृहस्थाचार को इस हेतु से ग्रहण करें[5]। अर्थात् जो जीव उपदेश सुनने का अभिलाषी हो, उसे पहले मुनिधर्म का उपदेश देना चाहिए और यदि वह मुनिधर्म ग्रहण करने की सामर्थ्य न रखता हो, तो बाद में श्रावक धर्म का उपदेश देना चाहिए। कहा है कि जो उपदेशदाता पहले मुनिधर्म न सुनाकर श्रावकधर्म का व्याख्यान करता है, उसको जिनमत में प्रायश्चित दण्ड के योग्य बतलाया गया है, क्योंकि कोई शिष्य धर्म में अत्यधिक उत्साहित है और उसे मुनिधर्म का उपदेश मिलता है तो वह मुनिपदवी अंगीकार कर लेता है। परन्तु उपदेशदाता यदि पहले ही उसे श्रावक-धर्म का उपदेश देगा, तो ऐसी परिस्थिति में वह श्रावक-धर्म को ही ग्रहण कर संतुष्ट हो जायेगा। अतएव मुनि-धर्म का उपदेश पहले अपेक्षित है[6]।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं। आचार्य अमृतचन्द्रजी के अनुसार सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही चारित्ररूप व्रतों का पालन कार्यकारी है। निश्चय पूर्वक व्यवहार-चारित्र का प्रतिपादन हुआ है। गृहस्थ-जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा प्रतिपादित है। पाँच व्रतों में रात्रिभोज की चर्चा का समावेश भी अहिंसा व्रत में किया है। उनके अनुसार रात्रिभोजन हिंसा के प्रबल कारणों में से एक है "हिंसा क्यों और कैसे" का समाधान करते हुए उन्होंने लिखा है कि "हिंसा नाम आत्म-परिणामों के विघात का है। यह विघात राग-द्वेषरूप कषाय प्रवृत्ति से होता है। इसलिए जिन प्रवृत्तियों के करने से राग की वृद्धि हो, वे सब हिंसा जनक है।" रात्रिभोजन में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रराग है। तीव्रराग के उदय में तीव्र-हिंसा का होना अनिवार्य है। मन, वचन, काय आदि नव भेदों के साथ रात्रिभोजन का त्यागी अहिंसक की कोटि में माना जाता है।

अंततः पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में वर्णित हिंसा-अहिंसा आदि से मानव जीवन में प्रमाणिकता और अप्रमत्तता का सद्भाव सम्भावित है तथा इससे यह सोच भी विकसित होती है कि अभीष्ट की सिद्धि में क्या हेय और क्या उपादेय है? क्या सार्थक है और क्या निरर्थक? हमारा जीवन कहाँ हिंसा से युक्त हो रहा है और कहाँ अहिंसा। हिंसा संसार-सागर का निमित्तकारण है, जबकि अहिंसा आत्म-प्राप्ति में प्रमुख रूप से सहायक होती है।

Scanned with OKEN Scanner

आधारभूत ग्रन्थ -

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, आचार्य अमृतचन्द्र, श्री परमश्रुत-प्रभावकमण्डल, आगास, १९७७ ई.

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की भूमिका, पं. नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ १३

२. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की भूमिका, पृष्ठ १४

३. आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतम् शिष्यबोधाय।। - पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या, ४२

४. अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचारनित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्ति।। - पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या, १६

५. तत्रापि च परिमाणं ग्रामापणभवन पाटका दीनाम्।
प्रविधाय नियतकालं करणीयं विरमणं देशात्।।
इति वरितो बहुदेशात् तदुत्थ हिंसाविशेष परिहारात्।
तत्कालं विरलमतिः श्रयत्य हिंसा विशेषेण।। -पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या, १३९-१४०

६. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या, १७

७. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या, १८-१९

८. रागाद्युदय-परत्वाद निवृत्तिर्नातिवर्ततेहिंसाम्।
रात्रिं दिवमहारतः कथं हि हिंसा न सम्भवति।।
किं वा बहुप्रलपितैरिति सिद्धं यो मनोवचनः कायैः।
परिहरति रात्रिभुक्तिं सततमहिंसा स पालयति।। - पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या १३०-१३४

रा.सं.सं., जयपुर परिसर, जयपुर

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
(शिशुपालवधम् 9-6)

Scanned with OKEN Scanner